

प्राचीन भारतीय मनीषियों के सामाजिक राजनीतिक चिंतन की वर्तमान परिस्थितियों में प्रासंगिकता

डॉ० रोचना मित्तल

एसो० प्रोफे० एवं विभागाध्यक्षा, राजनीति शास्त्र विभाग, शम्भु दयाल (पी०जी०) कॉलेज, गाजियाबाद

सारांश

यह आलेख लिखने का मुख्य उद्देश्य इस यथार्थ को सामने लाना है कि प्राचीन भारतीय राजनीति के स्वरूप के विशय में पाष्वात्य विद्धानों ने यह भ्रामक धारणा प्रसारित कर रखी है कि भारत में धर्म व आध्यात्मिक के क्षेत्र में तो पर्याप्त लेखन हुआ लेकिन राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में भारत शून्य था। राजनीति विशयक चिंतन भारत में नहीं हुआ तथा पश्चिम से राजनीतिक चिंतन का प्रारम्भ हुआ। जबकि कठोर यथार्थ यह है कि भारत में राजनीतिक को व्यक्ति के दैनिक क्रियाओं का एक हिस्सा मानते हुए हमारे चिंतको ने अलग से राजनीतिक चिंतन प्रस्तुत नहीं किया बल्कि हर चिंतन को व्यक्ति के सुखी समृद्ध व व्यवस्थित जीवन की प्राप्ति के लिये प्रस्तुत किया। हमारे प्राचीन मनीषी यह तथ्य बहुत स्पष्ट रूप से मस्तिष्क में लेकर चले कि राज्य व समाज की व्यवस्थाएँ व्यक्ति की सहमति से स्थापित और स्वीकृत है क्योंकि इनसे व्यक्ति को सुरक्षित सुव्यवस्थित और प्रगतिशील जीवन की गारंटी मिलती है। इसलिये उन्होंने राजशास्त्र पर अलग से कोई लेखन न करके व्यक्ति के जीवन में उनकी भूमिका और आदर्श स्वरूप को विविध कथाओं, प्रसंगों व उद्धरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया। पाष्वात्य चिंतको की रुचि उन राजनीतिक सिद्धांतों को प्रतिपादित करने में रही जो यह बताते हैं कि राज्य संस्थाएँ कैसी होनी चाहिये जबकि हमारे चिंतक व्यवहार में जो भी राज व्यवस्थाएँ काम कर रही हैं उनके आदर्श रूप का चित्रण करते हैं। वे 'चाहिये' पर चिंतन नहीं करते क्योंकि नैतिकता के आदर्श तो कितने ही गिनाये जा सकते हैं लेकिन उनका व्यवहार में यदि अम्ल ना हो सके तो वे व्यर्थ हैं इसलिए पाष्वात्य चिंतको का सारा चिंतन यदि व्यवहार की कसौटी पर काल्पनिक सिद्ध हुआ है तो हमारे मनीषियों द्वारा धर्म व आध्यात्म के आवरण में आवृत्त आदर्श वास्तविक और व्यवहार योग्य थे। उसी लिये पाष्वात्य चिंतकों की स्थूल दृष्टि राजशास्त्र पर लिखे प्रत्यक्ष ग्रंथों को भारतीय साहित्य और ज्ञान में खोजती रही और रिक्त रह गयी। हमारे नितीशास्त्र अथवा राजशास्त्र उस सार्वभौमिक और व्यापक धर्म का ही अंश था जो व्यक्ति समाज और राज्य सभी के कार्य कलापों का नियमन करता था।

महत्वपूर्ण शब्द: *Rajya Sata, Adarsh Raja, Kautlya, Manusmriti, Pashchatyak chintak, Ramayan, Mahabharat,*

शोधपत्र का संक्षिप्त
विवरण इस प्रकार है:

डॉ० रोचना मित्तल,
“प्राचीन भारतीय
मनीषियों के सामाजिक
राजनीतिक चिंतन की
वर्तमान परिस्थितियों में
प्रासंगिकता”, RJPP
2017, Vol. 15, No.2,
pp. 180-187

[http://anubooks.com/
?page_id=2004](http://anubooks.com/?page_id=2004)

Article No. 26(RP 575)

प्रस्तावना

समय का चक्र अपनी गति से चलते हुये नित नूतन इतिहास का सप्जन करता है। इतिहास जो कल के पद चिन्हों का दर्पण होता है आने वाले कल का मार्गदर्शक बन जाता है। प्राचीन भारतीय इतिहास में सामाजिक राजनैतिक एवं आर्थिक विचारधाराओं का पर्याप्त स्थान है। पुरातन राज्य व्यवस्थाओं का ऐतिहासिक आदर्ष आज भी उपयोगी सिद्ध हो सकते है। आवश्यकता उनका अध्ययन मनन एवं विप्लेशण करके उन्हें व्यवहार में उतारने को है। लेकिन भारत के वर्तमान सामाजिक राजनीतिक चिंतन की यह विडम्बना है कि वे विदेशी चिंतकों के आधार पर ही भारत की राजनीति समाज एवं अर्थव्यवस्था का विप्लेशण करते रहे हैं। इसके पीछे षायद पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित यह भ्रान्त धारणा भी प्रभावी रही है कि प्राचीन काल में भारतीय विचारकों की दृष्टि धर्मशास्त्र तथा आध्यात्मवाद पर ही केन्द्रित थी एवं भारतीय दर्शन में राजनीतिक चिंतन का अभाव था। जबकि कठोर यथार्थ यह है कि भारत का राजनीतिक इतिहास यूरोप की तुलना में कही अधिक प्राचीन है। वस्तुतः प्राचीन भारत में राजनीति विषयक चिंतन के संदर्भ में योरोपिय विचारकों की भ्रामक धारण का कारण यह रहा कि वे प्राचीन भारतीय साहित्य में से राज्य शास्त्र पर पृथक ग्रंथ ढूढने लगे जबकि यहां स्थिति इससे सर्वथा भिन्न थी। हमारे मनीषियों ने राजनीति को मनुष्य के दैनिक जीवन के एक अंग के रूप में देखा इसे अलग से उस प्रकार महत्व नहीं दिया जैसा कि यूरोपीय या पश्चिम विचारकों का दृष्टिकोण रहा। हमारे तत्कालीन विद्वानों ने अपना चिंतन किसी सिद्धान्त विशेष के प्रतिपादन के लिए प्रस्तुत नहीं किया बल्कि उन्होंने राजनीतिक क्रियाओं को नीतिशास्त्र अथवा राज शास्त्र के व्यापक धर्म का अंश माना जो व्यक्ति समाज और राज्य सभी के लिए कार्यकलापों का नियमन करता है अर्थात तत्वदर्शनाभिगामी प्राचीन भारतीय विचारकों ने अपने धार्मिक तथा सामाजिक दर्शन की सूक्ष्मता में जिन चरम तत्वों का संधान किया वे राजनीति की अर्न्तभावनाओं को अनुप्राणित करते रहें। उनका लौकिक एवं व्यवहारिक तथ्य उसी एक सत्य, विराट धर्म अथवा चरम विधि पर आधारित रहा। 19वीं शंदी के विद्वानों ने धर्म व आध्यात्म के आवरण में आवृत्त प्राचीन भारतीय चिंतन के लाक्षणिक अभिप्रायों को नहीं समझा और भारतीय राजनीतिक चिंतन को अति धूमिल करके प्रस्तुत किया। यूरोपीय चिंतकों का ऐसा दृष्टिकोण साम्राज्य का भी आदर्शों से अधिशासित था औद्योगिक क्राति में प्रथम होकर और विज्ञान की प्रगति कर लेने से उन्मादित हुए अपेक्षाकृत नवोदित योरोपीय राज्य अपनी श्रेष्ठता को मानव शास्त्र के सभी क्षेत्रों में मान्य बनाने का प्रयास करने लगे अपनी श्रेष्ठता के अहम के वशीभूत वे यह नहीं देख सके कि हमारे साहित्य में रामायण के राम के चरित्र और हर्षचरित् में वर्णित हर्ष के चरित्र एक राजा के उन गुणों का जीवन्त एवं व्यावाहारिक रूप प्रस्तुत करते है जो वास्तव में सम्भव है, व्यावहारिक है। वहाँ राजा का चरित्र प्लेटो द्वारा वर्णित दार्शनिक राजा जैसा काल्पनिक नहीं है। हमारे विद्वानों ने यह बताने की कोशिश नहीं की कि क्या होना चाहिए। जैसा कि पाश्चात्य चिंतन में दिखाई देता है वहां सिद्धांतकार अपना एक सिद्धांत देता है और व्यवहार रूप में उसको लागू करने पर अनेक विसंगतियां सामने आती है प्रतिक्रिया स्वरूप कोई नया सिद्धांत प्रस्तुत कर दिया जाता है जो

व्यवहारिकता के धरातल पर पुनः असफल हो जाता है उसका समाधान करने के लिए फिर से कोई नया सिद्धांत प्रस्तुत कर दिया जाता है। लेकिन हल कुछ नहीं निकलता जैसे— पूंजीवाद के दुश्परिणामों के समाधान में आया समाजवाद और साम्यवाद खुद में निहित अव्यावहारिकताओं के कारण राजव्यवस्थाओं के टूटने का कारण बना क्योंकि मानवीय मनोविज्ञान की कसौटी पर कसे जाने पर उनके क्रियान्वयन में आने वाली मानवीय कमजोरी को समझने की दूरदृष्टि सिद्धान्त के प्रतिपादन में नहीं रही। पाश्चात्य सिद्धांतकारों ने मनुष्य की क्रियात्मक गतिविधियों को सिद्धांत के अनुरूप करना चाहा और मनुष्य को सिद्धांतों से संचालित मशीन मान लिया। जबकि प्राचीन भारतीय मनीषियों ने व्यक्ति नैसृगिक व्यवहार को प्रधानता दी। उन्होंने यह नहीं बताया कि राजा या शासक को कैसा होना चाहिए? बल्कि प्रत्यक्ष उपस्थित प्राकृतिक रूप से जो मानवीय आचरण दिखा उसमें कैसी व्यवस्थाएं सम्भव हैं इस बात को कथा कहानी और विविध उद्धरणों के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए राज्य व समाज की आदर्श व्यवस्थाओं का निरूपण किया। धार्मिक चिंतन में उन्होंने सामाजिक व्यक्ति को वह आचरण करने के नियम प्रस्तुत किए जो समस्त के हित में समाज के हर सदस्य को धारण करने चाहिए स्पष्ट है कि जो भी प्राचीन भारतीय चिंतन है वह यही ध्वनित करता है कि राज्य व्यक्ति और समाज तीनों के समन्वित विकास और उत्कर्ष कैसे हो सकता है। प्राचीन राज्य व्यवस्था उतनी ही पुरानी है जितनी कि यहां की सभ्यता संस्कृति और धर्म। प्राचीन भारतीय साहित्य में राज्य व्यवस्था को राजधर्म, राजनीति, राज्यशास्त्र, दण्डनीति, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि शब्दों से संबोधित किया गया है। प्राचीन भारत में प्रचलित शासन पद्धतियों की जानकारी का स्रोत प्राचीन साहित्य, वेद, ब्राह्मण, धर्मसूत्र, धर्मशास्त्र, उपनिषद, पुराण, महाकाव्य (रामायण, महाभारत), जैनग्रन्थ तथा बौद्ध जातक आदि हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन भारत की शासन पद्धति पर लिखे ग्रंथ जैसे मनुस्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीतिशास्त्र, शुक्रनीति, वृहस्पति संहिता आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं। संस्कृत साहित्य में लिखे गये अनेक ग्रंथ जैसे पाणिनी के 'व्याकरण' (अष्टध्यायी) कालिदास के 'रघुवंश' विशाखादत्त के 'मुद्राराक्षस' आदि से भी प्राचीन भारतीय शासन पद्धति एवं समाज के बारे में जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त इस देश के शिलालेखों तथा सिक्कों में रक्षित लेखों से हमें इस विषय में बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं। यद्यपि अषोक और मौर्य साम्राज्य से पूर्वकाल में भारत में शिलालेख विद्या, पुरातत्व विद्या और प्राचीन स्मारकों के अभिलेखों का अभाव रहा जिसके कारण भारत के राजनीतिक दृष्टिकोण से अधिक शानदार एवं महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी उपलब्ध नहीं भी हो पाती है।

प्राचीन भारतीय सभ्यता के विकास में मनुकृत 'मनुस्मृति' तथा याज्ञवल्क्य कृपत 'याज्ञवल्क्य' स्मर्पति का इस अर्थ में बड़ा महत्व है कि इन ग्रंथों से तत्कालीन मानव समाज के जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्रों जैसे राज्य, समाज, राजा, शासन, न्याय, व्यवस्था, कर व्यवस्था, परराष्ट्र संबंध आदि का परिचय मिलता है। पैराणिक दृष्टि से मानव जाति के जनक के रूप में पहचान रखने वाले मनु का वर्णन प्राचीन भारतीय राजाओं में प्रथम के रूप में भी किया गया है। यद्यपि आधुनिक आलोचकों ने मनु के विचारों में ब्राह्मणवाद के एकछत्र राज्य को मानवाधिकारों के आधार पर

पूर्णतः अमान्य कर दिया है विकसित एवं सुसस्कृत आज के युग में जाति आधारित वर्गीकरण अतार्किक एवं अवैज्ञानिक होने के कारण स्वीकृत हो भी नहीं सकता लेकिन जिस काल में उस विचार ने स्थान लिया था उस परिवेश एवं परिस्थिति की शायद यही मांग रही होगी। इसके अतिरिक्त तब इसमें अस्पृश्यता जैसी अमानवीय बुराई भी नहीं थी जो कालांतर में व्यवसाय आधारित सामाजिक विभक्तीकरण के रूप में सामने आयी व एक वर्ग विशेष के उत्पीड़न का कारण बनी। निश्चित ही मनुस्मृति में वर्णित नारी पारतन्त्र्य तथा शुद्ध धर्म आज कोई अर्थ नहीं रखता लेकिन उसका राजदण्ड शिक्षा, गृहस्थ इत्यादि विषयों पर हुआ विचार वर्तमान में प्रासंगिक है। इसके अतिरिक्त उस समय के समाज के अनुसार व्यक्त व्यवस्था आज के समाज को छलती हुई सी दिखाई देती है। हमारे राजनीतिक चिंतक एवं मनीषी दलितोत्थान और नारी सशक्तिकरण की बात करते हैं लेकिन व्यवहारिक राजनीति में वहीं पुराना ढांचा प्रभावी दिखता है। जातिगत आधार पर मतदान होता है। प्रत्येक राजनीतिक दल हर क्षेत्र विशेष की जाति के आधार पर अपने प्रत्याशियों के नाम तय करते हैं। पिछड़ी जातियों का उत्थान कर विकसित जातियों के समकक्ष लाने के लिये संविधान में की गयी आरक्षण की व्यवस्था का कुत्सित राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये इस्तेमाल संविधान लागू होने से लेकर अब तक होता रहा है तथा आगे भी वास्तविक परिणाम प्राप्त करने की मंशा हमारे राजनेताओं की नहीं दिखाई पड़ती। दूसरी ओर सामाजिक स्थित का अवलोकन करें तो जातिगत उत्थान तथा जन्म के स्थान पर कर्म पर आधारित मानव स्थिति का मजबूत होना इस बात से प्रमाणित होता है कि आज अंतरजातीय विवाह उदार हृदय से हमारे परिवारों में एवं समाज में स्वीकृत हो रहे हैं, मान्य हो रहे हैं। इस बात का कोई अर्थ नहीं रह गया कि सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी की जाति क्या है उसकी शक्तियाँ उसका पद तय कर रहा है जाति नहीं। यों रामायण में जाति बधन से परे परिष्कृत एवं उच्च मानवीय मूल्यों का परिचय तब मिलता है जब क्षत्रिय वर्णी राम निम्न जाति की महिला शबरी के झूठे बेर बड़े निश्छल सहज एवं आत्मीय भाव से खा लेते हैं।

वाल्मीकि रामायण में भारत के सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और आदर्श रूप राजनीतिक जीवन का वास्तविक चित्रण है। राजा, अधिकारी वर्ग, सामन्त, प्रजा यहां तक कि ऋषिमुनि भी राजनीति से प्रभावित हैं। धर्म राज्यों का संचालक है लेकिन धर्म किसी वर्ग विशेष, जाति या साम्प्रदायिक तत्व से प्रभावित न होकर सदाचार, आत्मकल्याण तथा लोक कल्याण आदि भावनाओं के स्तम्भों पर आधारित था। रामायण में वर्णित यही धर्म राज्य का आधार स्तम्भ होने के कारण आज के युग के लिये मार्ग दर्शन के रूप में अवस्थित है। विश्व के सबसे बड़े महाकाव्य की संज्ञा से विभूषित महाभारत विविधता से पूर्ण महाकाव्य है। इसे पंचम वेद भी कहा गया है। इसके विभिन्न पर्वों में राजनीति विषय सामग्री उपलब्ध है। महाभारत कालीन राजाओं को दिये गये आदेशों से स्पष्ट होता है कि उस समय में राजनीति शास्त्र के अध्ययन अध्यापन की परम्परा बहुत ही सुव्यवस्थित थी। इनमें सबसे महत्वपूर्ण स्थान भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिये गये उपदेशों को प्राप्त है। भीष्म के अतिरिक्त वासुदेव कृष्ण, कृष्ण द्वैपायन, नारद मार्कण्डेय, वकदालभ्य देवस्थान, धौम्य आदि में भी विभिन्न अवसरों पर राजनीतिक उपदेश दिये थे। नारद

ने युधिष्ठिर को ही नहीं कृष्ण को भी राजनीति की शिक्षा दी थी। महाभारत में विदुर नीति राजनीति की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण रही है। विदुर ने राजनीति को मूलतः नैतिक मूल्यों पर आधारित किया। भीष्म गीता में भीष्म पिता की दृष्टि भी मूल्यात्मक ही रही। किन्तु भारतीय राजनीति के वर्तमान परिदृश्य में नैतिक मूल्यों का बहुत तेजी से पतन हुआ है। जिससे अनेक समस्याएँ पैदा हुई हैं। विदुर एवं भीष्म पितामाह का राजनीतिक चिंतन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पूर्णतः प्रासंगिक है। आम जनता के कष्टों का निवारण समाज व राजनीति में नैतिकता का समावेश करके ही किया जा सकता है। जनता भी भ्रष्टाचार मुक्त व्यवस्था ही चाहती है। यह इस उदाहरण से प्रमाणित होती है कि विश्व नाथ प्रताप सिंह ने भारतीय गणतंत्र में लोक सभा का नवां निर्वाचन केवल पूर्ववर्ती सरकार के भ्रष्टाचार के खुलासे का आश्वासन जनता को देकर तथा भ्रष्टाचार मुक्त शासन देने का विश्वास जनता को दिलाकर ही जीता। अभी हाल ही में हुये 16वीं लोकसभा के चुनावों में मोदी के नेतृत्व में चुनावों भाजपा की जीत होना भी इसी कारक से प्रभावित रहा। महाभारत की शासन व्यवस्थाओं का एक एक पक्ष राजनीतिक विचारों के इतिहास में अपना विशेष महत्व रखता है। निष्कर्षतः महाभारत का यह संदेश है कि राजनीति विशुद्ध रूप से ज्ञान की चिंतनात्मक एवं सैद्धान्तिक शाखा ही नहीं वरन् यह संस्थागत नियमन तथा सरकारी कार्यों के कुशल प्रशासन का व्यवहारिक विज्ञान है। यह संदेश आज भी प्रासंगिक है।

बौद्ध ग्रंथों में जहां बुद्ध का चरित्र संकलित है वहीं से उस काल की शासन व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला गया है। इन शासन व्यवस्थाओं में राजा के अधिकारों को सांविधानिक प्रतिबंध से मर्यादित किया गया है। राजा के पुरोहित तथा अमात्यों का शासन में महत्वपूर्ण स्थान है। गणराज्य का शासन सभा और समिति द्वारा होता था जिसके दो सदन थे। जिनमें राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक विषयों पर वाद-विवाद होता था। जातक में लिच्छवि शासकगणों का शासन था। उन्हें प्रजातंत्रीय शासक कहा गया है। गौर करें तो आज संसदीय प्रजातंत्र के जनक के रूप जानी जाने वाली ब्रिटिश शासन व्यवस्था बिल्कुल इसी तरह की है जो बौद्ध साहित्य लिखे जाने के बहुत बाद में अस्तित्व में आई। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि बुद्ध के अहिंसावादी दर्शन का अभाव तत्कालीन तथा परवर्ती राजनीतिक पर स्पष्ट दिखाई देता है। कलिंग विजय के बाद बुद्ध वादी दर्शन के परिणाम स्वरूप ही सम्राट अशोक का हृदय परिवर्तन हुआ। इसी प्रकार जैन साहित्य में वर्णित राज व्यवस्था भी बौद्ध ग्रंथों से मिलती जुलती है। जैन मनीषियों ने भी बौद्ध दार्शनिकों की भांति गणराज्य प्रणाली में विश्वास व्यक्त किया। जैन मुनियों का राजा से अभिप्राय उस व्यक्ति से था जिसकी शासन क्षमता लौकिक नहीं नैतिक आदर्शों से अनुप्राणित हो। नैतिक अनुशासन को दृढ़ करके प्रजा की रक्षा करना राजा का नैतिक कर्तव्य है। जैन पुराणों में केन्द्राभिमुखी राजसत्ता का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है। जिस व्यक्ति ने राज्य का निर्माण किया वही शासक भी है। राज्य की समस्त सत्ता उसमें केन्द्रीभूत थी। किन्तु राजा के राज्य संबंधी मौलिक अधिकारों में राजतंत्रीय निरंकुशता का सिद्धांत स्वीकृत नहीं है। भरत इनके प्रभुता सम्पन्न शासक हुये विश्व विजय प्राप्त कर उन्होंने 'चक्रवर्तिन' पद प्राप्त किया। लेकिन इसके बाद स्वयं ही उनका राजपद त्याग देना यह संदेश देता है कि राजाओं को सदाचारी तथा तापस जीवन

व्यतीत करते हुये शुचितापूर्ण उद्देश्य से शासन करना चाहिये। आज के राजनेता एवं शासन के संचालक यदि पुराने शासन व्यवस्थाओं में उपलब्ध राजर्षि के चरित्र को प्राप्त कर ले तो निश्चय ही भारत लोक कल्याणकारी राज्य के उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगा। प्लेटों के राजा के आदर्श गुण हमारे पुरातन राज संस्थाओं के राजाओं के चरित्र में हूबहू विद्यमान रहे। जैन विचारकों का ध्येय था। भीषण रण हिंसा को समाप्त कर विश्व शासन की स्थापना। न राज्यों का प्रथक अस्तित्व होगा न राज्य विस्तार के लिये युद्ध। आज भी राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक विक्षोभ तथा शस्त्र प्रतिस्पर्धा के समाधान के लिये विश्व राज्य एवं विष्व सकार की कल्पना को भूमण्डलीकरण के विचार के अंतर्गत, साकार करने का प्रयास अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का है।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन की चर्चा कौटिल्य का उल्लेख किये बिना अधूरी रह जाती है। कौटिल्य ने जो चार विद्यायें गिनाई, उनमें से एक दण्डनीति भी ज्ञान है दण्ड नीति या राजशास्त्र भारत के उन पुराने शास्त्रों में से है जो वैदिक काल से आज तक देशवासियों का दिशा दर्शन करते रहे है। प्राचीन शास्त्रों में उल्लिखित दण्ड शब्द सजा के अर्थ में नहीं वरन् मूल अर्थ दम के संदर्भ में प्रयुक्त है जो मर्यादा का भाव भी अपने में संनिहित किये हुये हैं। कौटिल्य के अनुसार दण्ड का वास्तविक अर्थ है— मनुष्यों की स्वेच्छाचारिता व उच्छृंखलता को मर्यादित करना। स्वयं कौटिल्य ने 'दण्डमूलाडस्तिस्त्रों विद्या' कहकर अपने अर्थशास्त्र में अन्य तीन विद्याओं का मूल दण्डनीति को ही बताया है। उनकी कृति अर्थशास्त्र में वर्णित आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक, न्यायिक तथा शासन विज्ञान संबंधी विचारों ने न केवल भारत वरन् अन्य देशों में भी हलचल मचा दी। इस ग्रंथ के प्रकाश में आने के बाद पाश्चात्य विद्वानों को अपनी यह भांति दूर करनी ही पड़ी कि भारत में ज्ञान हिन्दू धर्म, ईश्वर, ज्ञान तथा दर्शन तक सीमित था, उनका आर्थिक राजनीतिक क्षेत्र में योगदान नगण्य था। कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन भारतीय राजनीति का सबसे अधिक स्पष्ट वैज्ञानिक एवं विस्तृत ग्रंथ है। जिससे तत्कालीन राजनीतिक विचारों और संस्थाओं का व्यापक परिचय प्राप्त होता है। उनके द्वारा प्रतिपादित राजव्यवस्था व नीति निर्देशन न केवल विशाल मौर्य साम्राज्य को निर्देशित करती थी बल्कि दूरस्थ स्थानों को व राजनीति को भी प्रभावी करती थी। कौटिल्य का अर्थशास्त्र कोई आदर्श एवं सिद्धांतों का दर्शन मात्र नहीं है। वरन् इसमें व्यक्त विचार व सिद्धांत सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है। यह सत्य है कि कौटिल्य ने तत्कालीन राजतंत्र के आधार पर राज्य व्यवस्थाओं का निरूपण किया है जबकि आधुनिक राज्य व्यवस्था प्रजातंत्रिक स्वरूप पर आधारित है। लेकिन कौटिल्य द्वारा वर्णित पुरातन राजनीतिक, सामाजिक प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक प्रशासनिक, न्यायिक, सैनिक आदि व्यवस्थाओं तथा वर्तमान व्यवस्थाओं में काफी कुछ समानता दिखती है। अर्थशास्त्र में लोक कल्याणकारी राज्य तथा प्रजा के योगक्षेम पर विशेष बल दिया गया है। इस हेतु आर्थिक सत्ता सुदृढ़ होना परमावश्यक बताया गया है। यह आज के आर्थिक युग में पूर्णतः प्रासंगिक है। कौटिल्य ने तत्कालीन समय में सुरक्षा की दृष्टि से गणतंत्रों के औचित्य को सही नहीं माना लेकिन राजा की शक्तियों को भी उसने मर्यादित किया। इसका ऐतहासिक प्रमाण है कि कौटिल्य के समय की शासन व्यवस्था में मंत्रिपरिषद एवं युवराज में शासन की शक्तियाँ निहित थी। सम्राट

अशोक के युवराज सम्पाति ने मंत्रियों के परामर्श पर आदेश निकाल कर सम्राट को बाध्य किया किवे बौद्ध भिक्षुओं को स्वर्ण थाल, कटोरी एवं चम्मच न दें। दूसरे आदेश द्वारा चांदी के थाल कटोरी एवं चम्मच देने का भी निषेध किया गया। भारतीय सर्वधिान एवं शासन को ब्रिटिश शासन व्यवस्था पर आधारित माना जाता है लेकिन यह कौटिल्य के राज संचालन के व्यवहारिक पक्ष से पूर्णतः मिलता जुलता है जैसे कौटिल्य का मत है जिस प्रकार एक पहिये की गाडी नहीं चल सकती उसी प्रकार मंत्रि परिशद के बिना राजा राज्य का संचालन नहीं कर सकता आधुनिक भारतीय शासन व्यवस्था में भी संविधानके अनुच्छेद 71 के अन्तर्गत राष्ट्रपति के कार्य संचालन में सहायता व मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिशद होती है। जिसका प्रमुख प्रधान होता है। प्रधानमंत्रि की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है तथा प्रधानमंत्रि के परामर्श पर अन्य मंत्रियों के नियुक्ति की जाती है।

कौटिल्य के बाद शुक्र ने राज्य व शासन पर विषद एवं सार गर्भित चिंतन प्रस्तुत किया। शुक्र ने अपने पूर्वगामियों महाभारत मनु और कामन्दक से तथा अप्रत्यक्ष रूप में कौटिल्य से स्वतंत्रता पूर्वक व्यापक सामग्री ली। उन्होंने शासन के आदर्श रूप को प्रस्तुत करते हुये राज्य के विस्तृत कार्य क्षेत्र का उल्लेख किया है। जाति के संदर्भ में वे रुढ़िवादी न होकर सादाचरण को ही जाति की श्रेष्ठता का आधार मानते हैं।

इस प्रकार वैदिक काल में राजनीति शास्त्र की मंदाकिनी का जो स्रोत निकला वह अक्षयय था। इसलिये वह कभी क्षीण नहीं हुआ, बल्कि पुराण काल में एवं स्मृतिकाल में निरंतर प्रवाहित एवं परिवृधित होता हुआ वह चाणक्यहाल में भागीरथी बन गया जिसमें अवगाहन करके सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने देश को कपटकूटपट्टु विदेशी आक्रामकों के चंगुल से बचाया। हमारे संस्कृत वाङ्मय के विषाल क्षीर सागर में राज्य विषयक विचाररत्न तथा ग्रंथरत्न भी भरे पड़े हैं जो विश्व की राजनीति ज्ञान विषयक दरिद्रता दूर कर सकते हैं। प्राचीन भारतीय मनीषियों के द्वारा राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन प्रस्तुत किया गया है जिस पर हमारी स्वयं की दृष्टि बहुत कम गयी है। हमारे विद्वान चिंतकों ने राज्य के सफल संचालन एवं समाज के उत्थान के लिये महत्वपूर्ण व्यवस्थाये प्रतिपादित की हैं। ये श्रेष्ठ व्यवस्थाये पुरातन काल से आज तक शासन और समाज को किसी न किसी प्रकार अनुप्राणित करती रही हैं। वर्तमान भारतीय समाज अनेकानेक विसंगतियों और समस्याओं से ग्रसित है नैतिक मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है। अपराधों में निरंतर वृद्धि हो रही है और आतंकवाद के कारण सुरक्षा संकट में है। कानून और व्यवस्था में भ्रष्टाचार के चलते अनियमितता व कमजोरी आ गयी है। ऐसे में अपनी पारम्परिक एवं सांस्कृतिक धरोहर के रूप में संचित प्राचीन मनीषियों एवं विद्वानों के चिंतन एवं अनुभावजन्य सिद्धान्तों तथा व्यवस्थाओं का विश्लेषण एवं मूल्यांकन वर्तमान परिप्रेष्य में करके निश्चय ही फलदायी निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं। जब हमारे पास अपनी प्राचीन संस्कृति इतनी समृद्ध है जिसमें विचार नहीं व्यवहार के स्तर पर सुसंचालित राजव्यवस्थाओं के ऐसे उदाहरण हैं जो मानव मनोविज्ञान और सुसंगठित समाज व्यवस्था के मापदण्डों पर बिल्कुल खरे उतरते हैं, तो हमारे चिंतकों को

अंधा पश्चिमी प्रेम छोडकर तथा वहां के उलझे चिंतन को ही सुलझाने की कवायद में समय नष्ट न करके अपने चिंतन का आधार प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन को बनाना चाहिये ।

संदर्भ

- 1— आर्य अनुपमा, प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राज्य का स्वरूप, लक्ष्मी बुक पब्लिकेशन 2016 ।
- 2— प्रसाद मणिशंकर , कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, प्रकाशित वर्ष 1998, भारतीय साहित्य संग्रह
- 3—परमात्मा शरण, प्राचीन भारत में राजनीतिक, विचार एवं संस्थायें, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ ।
- 4—दत्त गीता, प्राचीन भारत में बैंक व्यवस्था राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली ।
- 5—लल्लन जी गोपाल , प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999
- 6—टण्डन किरण, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारक, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1988
- 7—वर्मा वी पी आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2010—11
- 8—सिन्हा विनोद एवं सिन्हा रेखा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं राजनीतिक चिंतन, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1989
- 9—वर्मा हरिश्चन्द्र, प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक विचार एवं संस्थायें, कालेज बुक डिपो नई दिल्ली 1969